Date:26-10-21

दैनिक जागरण

समान अवसर की राह में रोड़ा सीसैट

डा. विजय अग्रवाल, (लेखक पूर्व प्रशासनिक अधिकारी हैं)

सीसैट यानी सिविल सर्विसेज एप्टीट्यूड टेस्ट पेपर 2011 में अपने जन्म से ही घोर विवादों से घिरा रहा है, जिसे संघ लोकसेवा आयोग (यूपीएससी) 'सामान्य ज्ञान द्वितीय' कहना पसंद करता है। हालांकि, इस दौरान इसमें दो बदलाव किए गए हैं। आरंभ में इसके प्राप्तांक कुल प्राप्तांकों में जुड़ते थे, लेकिन 2015 से इसे 33 प्रतिशत न्यूनतम स्कोर के साथ केवल क्वालिफाइंग पेपर कर दिया गया। दूसरा यह कि इसके 80 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों में भाषा ज्ञान के नाम पर जो सात-आठ प्रश्न अंग्रेजी भाषा पर पूछे जाते थे, उन्हें समाप्त कर दिया गया, लेकिन क्या इन दो सुधारों के बाद बात बन गई? नहीं। इस नए पेपर ने कुछ ऐसा कर दिया है कि कुल प्रशासकों के लगभग तीन-चौथाई पद विज्ञान के तथा लगभग आधे पद इंजीनियर्स के लिए सुरक्षित हो गए हैं। यदि इस देश की सिविल सेवा को समावेशी बनाना है तो इस पेपर से जुड़ी समस्याओं का समाधान अनिवार्य है। फिलहाल सीसैट का पेपर पूरी तरह विज्ञान एवं अंग्रेजी वालों के पक्ष में है। इसलिए हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषा माध्यम वाले युवा मुख्य परीक्षा में पहुंच ही नहीं पाते। आंकड़े भी इसे सही साबित कर रहे हैं। 2010 में मुख्य परीक्षा में पहुंचने वाले कुल 11,859 प्रतियोगियों में हिंदी माध्यम वाले विद्यार्थी लगभग 4,200 थे। यह संख्या सीसैट के लागू होते ही 2011 में गिरकर कुल 11,230 में से 1,682 रह गई। यह संख्या गिरते-गिरते पिछले साल कुल 11,467 में मात्र 571 हो गई। प्रश्न उठता है कि यदि इस गिरावट के लिए सीसैट जिम्मेदार नहीं है तो इसके लिए जिम्मेदार कारणों की तलाश की जानी चाहिए। ऐसा इसलिए भी, क्योंकि ये आंकड़े आयोग के 'सेम प्लेइंग फील्ड' के समानतामूलक अनिवार्य सिद्धांत की धज्जियां उड़ाते मालूम पड़ रहे हैं।

हालांकि, सीसैट तथा सामान्य अध्ययन के प्रश्न-पत्रों में पूछे जाने वाले सवालों के स्तर के बारे में आयोग कहता है कि 'उनका उत्तर देने की अपेक्षा एक सामान्य पढ़े-लिखे व्यक्ति से की जाती है', लेकिन जब आप सीसैट के प्रश्नों को पढ़ेंगे तो वे बाउंसर बाल की तरह लगेंगे। हिंदी भाषा का अनुवाद इतना मशीनी और भ्रष्ट होता है कि हिंदी के अच्छे-अच्छे जानकारों को पसीना आ जाए। ऐसी स्थिति में क्वालिफाइंग 33 प्रतिशत स्कोर करना नाकों चने चबाना हो जाता है। ऐसे में यही निष्कर्ष निकल रहा है कि यह पेपर इंजीनियर्स (गणित) के पक्ष में है। कई ऐसे युवा हैं, जो सामान्य अध्ययन प्रथम में 72 प्रतिशत अंक लेकर आए, लेकिन सीसैट में 31 प्रतिशत पर रुक गए। ऐसे युवा सैकड़ों नहीं, कई हजारों में होते हैं, जो प्रथम प्रश्न-पत्र में कट आफ मार्क्स से 15-15 प्रतिशत अधिक होने के बावजूद मुख्य परीक्षा तक नहीं पहुंच पाते। जबकि ज्ञान का सही परीक्षण करने वाला पेपर यही होता है। न्यूनतम 33 प्रतिशत का स्कोर ही गलत मालूम पड़ता है। पिछले वर्ष अनुसूचित जाति के लिए प्रथम पेपर का कट आफ 34.36 प्रतिशत था। आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के लिए यह इससे थोड़ा अधिक 38.76 प्रतिशत रहा। क्या इसके साथ सीसैट के क्वालिफाइंग मार्क्स 33 प्रतिशत का कोई तालमेल है? दिव्यांगों के लिए प्रथम प्रश्न-पत्र का कट आफ मार्क्स 20.41 प्रतिशत रहा। क्या इनके लिए भी सीसैट का न्यूनतम 33 प्रतिशत रखना न्यायपूर्ण मालूम पड़ता है? मुख्य परीक्षा में सामान्य अंग्रेजी के क्वालिफाइंग मार्क्स 25 प्रतिशत और सामान्य भाषा के लिए 30 प्रतिशत हैं। इनमें निगेटिव मार्किंग नहीं है। सीसैट में निगेटिव मार्किंग होने के बावजूद यह 33 प्रतिशत है। क्यों? मुख्य परीक्षा के निबंध, सामान्य अध्ययन के चार और वैकल्पिक विषयों के दो प्रश्न-पत्रों में न्यूनतम पासिंग मार्क्स 10 प्रतिशत रखे गए हैं, जबकि सीसैट में यह 33 प्रतिशत हैं। सामान्य अध्ययन प्रथम प्रश्न-पत्र का 2016 में कट आफ 58 प्रतिशत था, जो पिछले वर्ष घटकर 46.26 प्रतिशत हो गया। यह 12 प्रतिशत की गिरावट है, लेकिन तब भी प्रतियोगी सफल हुए। जाहिर है न्यूनतम प्राप्तांक प्रश्नों की प्रकृति पर निर्भर

होता है। सीसैट में इस तरह के लचीलेपन की कोई गुंजाइश नहीं। सामान्यतया स्कूलों-कालेजों में पासिंग मार्क्स 33 प्रतिशत ही होते हैं, लेकिन उनका बहुत निश्चित पाठ्यक्रम होता है और निगेटिव मार्किंग भी नहीं होती।

सीसैट गैर अंग्रेजीभाषी युवाओं के मन में जिस तरह आक्रोश का भाव पैदा कर रहा है, उसे देखते हुए इस पर पुनर्विचार किए जाने की जरूरत है। इसके लिए कुछ सुझाव हैं। पहला, क्वालिफाइंग मार्क्स को वर्तमान 33 प्रतिशत से घटाकर अधिकतम 25 प्रतिशत तक किया जाए, ताकि अन्य विषयों के अच्छे प्रतियोगियों को भी मुख्य परीक्षा में बैठने का अवसर मिल सके। दूसरा, प्रश्नों के स्तर को सामान्य किए जाने की आवश्यकता है। तीसरा, हिंदी-अनुवाद से संबद्ध है। इस भाषा को गूगल से मुक्त कराकर समझने लायक बनाया जाए। चौथा, हो सके तो इस पेपर को ही समाप्त कर दिया जाए। यदि इसे आवश्यक समझा ही जाता है तो इस तरह के कुछ प्रश्नों को सामान्य ज्ञान प्रथम के प्रश्न-पत्र में रखा जा सकता है। यह व्यवस्था पहले भी थी। इसके परीक्षण के लिए मुख्य परीक्षा का भी उपयोग किया जा सकता है। पहले मुख्य परीक्षा के सामान्य ज्ञान द्वितीय प्रश्न-पत्र के 300 अंकों में 60 अंक इसी से संबद्ध होते थे। इनके अलावा प्रारंभिक परीक्षा में ही सामान्य ज्ञान के द्वितीय पेपर में अन्य विषयों से संबंधित प्रश्नों को शामिल करते हुए कुछ प्रश्न सीसैट के भी रखे जा सकते हैं। अब जब सीसैट पर आपत्तियों पर विचार किया जा रहा है तब यूपीएससी को समझना होगा कि मौजूदा व्यवस्था समान अवसर की राह में बाधक बन रही है।

THE TIMES OF INDIA

Date:26-10-21

Smarter Drug Laws

Social justice ministry is right. But enlightened narcotics control needs even more reforms

TOI Editorials

The Union social justice ministry has proposed an important amendment to the Narcotic Drugs and Psychotropic Substances Act – treat those apprehended with small quantities of drugs as victims rather than culprits. Terming them as drug users instead of NDPS Act's definition of drug consumers as "addicts", the ministry recommended a mandatory minimum period of 30 days at a rehabilitation/ de-addiction facility followed by one year of community service. These are humane and smart recommendations. But reforms need to go further.

Cannabis, outlawed by NDPS Act in 1985, despite its long presence in Indian culture, must be decriminalised. A remodelled NDPS Act focussed instead on tackling the real problem of trafficking hard drugs, is needed. Much institutional energy is expended in prosecuting drug users caught with small quantities for personal consumption. Backlogged criminal courts aggravate the situation. The Narcotics Control Bureau is getting embroiled in small drug consumption cases and reflexively opposing bails. This shows how even elite agencies can lose way. And the current imbroglio over Aryan Khan's case and its many twists demonstrate what NCB should not be expending its energies on.

Policing agencies tend to use stringent laws like a blunt instrument. Though possessing small quantities of cannabis is punishable with upto one-year imprisonment and hence should be bailable, police and prosecution get tremendous leeway to routinely accuse drug consumers of being in cahoots with drug syndicates. This transforms even minor offences into ones of severe magnitude. Making laws more stringent demands they be defined precisely, with safeguards. Otherwise the law fails its purpose. Inclusion of cannabis in NDPS is an example of creating avenues for crime where none existed. Heavyweight ministries like home, which controls NCB, and finance, with administrative authority over NDPS Act, must seriously consider the social justice ministry's suggestions – and go even further.

THE ECONOMIC TIMES

Date:26-10-21

Get to Net Zero By 2060, India

Demand net-negative goals for rich nations

ET Editorials

India needs to stop fighting the idea of setting a net-zero target date. It must set a date, not because the major economies and partner countries in the G20 have either set a target or given a political commitment for one, but because it is critical for making good on its own ambitions of economic growth and bridging developmental gaps. A net-zero target is more than an emissions goal. It is a piece of shorthand for the tectonic shift that is required to secure growth in a climate-constrained world. It requires policies, institutions and structural changes to meet this goal. Considering the paradigm shift, India should consider 2060 as its target date for reaching net-zero GHG emissions.

A net-zero target requires reducing emission as much as possible, and to balance out the emissions that cannot be reduced through offsets and carbon sinks. India argues that given its economy is still growing, reducing net emissions to zero or near-zero does not make sense and that it only helps rich nations most responsible for the warming of the planet to shirk their responsibility. This is sound, especially as the rich nations have not delivered on their commitments on support and tech transfer. The principles of equity and common and differentiated responsibility must be adhered to. All countries should strive to reduce fresh emissions, including India, but the rich nations must also work on removing carbon dioxide from the atmosphere. That is their moral, differentiated responsibility. Carbon removal in excess of the 40 billion tonnes added every year means that rich countries must move to net negative, and fast, even as countries like India move to net zero.

A net-zero target signals to investors that its policies take into account the risk that climate change poses, and could facilitate additional investment flows. It is a signal to all other stakeholders as well, that the nation is committing to a development trajectory that addresses climate change. Such a shift would boost growth, not depress it, and improve quality of life.

Date:26-10-21

THE HINDU

A reminder that India still trails in the hunger fight

The Government's objection to the methodology of the Global Hunger Index is not based on facts

Dipa Sinha, [Faculty at Ambedkar University Delhi.]

The Global Hunger Report (GHR) has once again made headlines in India for the country's poor ranking in terms of the Global Hunger Index (GHI). The report ranks India at 101 out of 116 countries, with the country falling in the category of having a 'serious' hunger situation. The ranks are not comparable across years because of various methodological issues and so it is wrong to say that India's standing has fallen from 94 (out of 107) in 2020. However, it is true that year after year, India ranks at the lower end — below a number of other countries that are poorer in terms of per capita incomes. This in itself is cause for concern.

The indicators

The Government of India, through a press release, refuted the GHI, claiming that it is 'devoid of ground reality' and based on 'unscientific' methodology. The GHI is 'based on four indicators — percentage of undernourished in the population (PoU); percentage of children under five years who suffer from wasting (low weight-for-height); percentage of children under five years who suffer from stunting (low height-for-age), and percentage of children who die before the age of five (child mortality)'. The first and the last indicators have a weight of one-third each and the two child malnutrition indicators account for one-sixth weightage each in the final GHI, where each indicator is standardised based on thresholds set slightly above the highest country-level values. Looking at each of these indicators separately, India shows a worsening in PoU and childhood wasting in comparison with 2012. It is the PoU figure of 15.3% for 2018-20 that the Government is contesting.

From official data sources

The Government's objection to the methodology, that "They have based their assessment on the results of a 'four question' opinion poll, which was conducted telephonically by Gallup", is not based on facts.The report is not based on the Gallup poll; rather, it is on the PoU data that the Food and Agriculture Organization of the United Nations (FAO) puts out regularly (as has also been clarified by the publishing agencies). PoU, according to the FAO, 'is an estimate of the proportion of the population whose habitual

food consumption is insufficient to provide the dietary energy levels that are required to maintain a normal active and healthy life'. PoU is estimated taking into account a number of factors such as food availability, food consumption patterns, income levels and distribution, population structure, etc. All the data used are from official data sources of respective national governments. In the absence of food consumption data in most countries, this indicator is an estimate based on a modelling exercise using available data; therefore, there is some margin of error. Most of the criticism of the FAO's PoU data has been about how it underestimates hunger rather than over. Therefore, while there is scope for a valid discussion on the GHI methodology and its limitations, this objection by the Government is not warranted.

Slow rate of progress

The main message that the GHR gives is to once again remind us that India has not been very successful in tackling the issue of hunger and that the rate of progress is very slow. Comparable values of the index have been given in the report for four years, i.e., 2000, 2006, 2012 and 2021. While the GHI improved from 37.4 to 28.8 during 2006-12, the improvement is only from 28.8 to 27.5 between 2012-21. The PoU data show that the proportion of undernourished population showed a declining trend up to 2016-18 when it reached the lowest level of 13.8%, after which there is an increase to 14% for 2017-19 and 15.3% for 2018-20. Other data also broadly validate these findings. The partial results of the National Family Health Survey-5 (2019-20) also show that stunting and wasting indicators have stagnated or declined for most States for which data is available. The leaked report of the consumption expenditure survey (2017-18) also showed that rural consumption had fallen between 2012-18 and urban consumption showed a very slight increase.

A period before the pandemic

It must also be remembered that all the data are for the period before the COVID-19 pandemic. There were many indications based on nationally representative data — such as from the Centre for Monitoring Indian Economy and various field surveys conducted by research organisations, academics and civil society groups — that the situation of food insecurity at the end of the year 2020 was concerning, and things are most likely to have become worse after the second wave. Many of these surveys find that over 60% of the respondents say that they are eating less than before the national lockdown in 2020. Services such as the Integrated Child Development Scheme (ICDS) and school mid-day meals continue to be disrupted in most areas, denying crores of children the one nutritious meal a day they earlier had access to. It would, therefore, not be surprising if national surveys (hopefully conducted soon) show a further slowdown in improvement in malnutrition.

The novel coronavirus pandemic has affected food security and nutrition across the world. In countries such as India — where the situation was also already poor to begin with — the impact is probably worse. The response cannot be one of denial; rather, what is needed are measures to ensure rapid recovery. It has been pointed out by many that the relief measures of the Government, so far, have been inadequate in comparison to the scale of the problem.

Cuts for schemes

The only substantial measure has been the provision of additional free foodgrains through the Public Distribution System (PDS), and even this has been lacking. It leaves out about 40% of the population, many of whom are in need and includes only cereals. Also, as of now, it ends in November 2021. At the

same time, inflation in other foods, especially edible oils, has also been very high affecting people's ability to afford healthy diets. On the one hand, while we need additional investments and greater priority for food, nutrition and social protection schemes, Budget 2021 saw cuts in real terms for schemes such as the ICDS and the mid-day meal.

The argument that the GHI is an indicator of undernutrition and not hunger, is only diverting attention away from more substantial issues. Of course, malnutrition is affected by a number of factors (such as health, sanitation, etc.) other than food consumption alone, but that in no way means that healthy diets are not central. There is no denying that diverse nutritious diets for all Indians still remain a distant dream.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:26-10-21

नदियों का पुनर्जीवन और जल नीति का पुनरुद्धार

मिहिर शाह, (लेखक शिव नाडर यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर हैं। वह नई राष्ट्रीय जल नीति का मसौदा बनाने वाली समिति के चेयरमैन रहे हैं)

अनादि काल से भारत के लोगों का नदियों के साथ बेहद आत्मीय रिश्ता रहा है और यह हमारे सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का एक अविभाज्य अंग है। तमाम लोग नदियों के जल को पवित्र और उपचारात्मक शक्ति से लैस मानते हैं। हालांकि आजादी के बाद से अपनाई गई जल नीति ने नदियों को बुनियादी तौर पर आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति करने वाले एक संसाधन के तौर पर ही देखा है। नदियों के संबंध में इस मशीनी नजरिये ने उनकी हालत को काफी खराब किया है और आज स्थिति यह हो गई है कि कई नदियों का प्रवाह बेहद कम हो गया है और वे प्रदूषण से भरे नाबदान बन चुकी हैं।

नई राष्ट्रीय जल नीति में हमारी नदी प्रणालियों को पुनर्जीवित करने को सबसे ज्यादा अहमियत दी गई है। नदियों की अनमोल आर्थिक भूमिकाओं को स्वीकार करने के साथ ही नदियों के संरक्षण एवं पुनरुद्धार को प्राथमिकता एवं बुनियादी अहमियत दी गई है। इसके लिए अब यह पूरी तरह साफ हो चुका है कि नीति में फौरन बदलाव के बगैर आर्थिक या कोई अन्य उपयोगी उद्देश्य पूरा करना तो दूर, हमारी नदियों का गौरव भी जल्द ही अतीत की बात हो जाएगा।

नदियों को विशुद्ध रूप में नदी-भूदृश्य कहा जाता है क्योंकि वे असल में अंतर्संबद्ध जलविज्ञान एवं पारिस्थितिकी प्रणालियां हैं। एक नदी सिर्फ जल धारा तक ही सीमित नहीं होती है बल्कि उसमें सभी तरह की जलधाराएं एवं उनके जलग्रहण-क्षेत्र का भी समावेश होता है। नई जल नीति में कहा गया है कि नदी घाटियों को पानी-ऊर्जा-जैवविविधता-तलछट के एक गतिशील साम्यावस्था के रूप में देखा जाना चाहिए। इस तरह जैव विविधता, भू-संरचना, जलनिकासी, आर्द्र भूमि एवं जलवाही स्तर जैसे विभिन्न घाटी अवयवों की अखंडता बनाए रखना बेहद अहम है।

नई जल नीति में यह अनुशंसा की गई है कि जलदायी क्षेत्र समेत नदी घाटी को ही किसी भी जल संरक्षण एवं पुनरुद्धार योजना की इकाई बनाया जाना चाहिए। निचले स्तर से ऊपरी स्तर तक नदी घाटी संगठनों का ढांचा खड़ा किया जाए ताकि वे लोकतांत्रिक, समावेशी, बहुल-हितधारक मंचों के तौर पर काम कर सकें। नदियों में फिर से प्रवाह लाने के लिए तत्काल ये कदम उठाने की जरूरत है- जलग्रहण क्षेत्रों में फिर से वनस्पतियां उगाना, भूजल निकासी का सख्त नियमन और नदी ताल से पानी निकालना, बालू एवं कंकर के बेहिसाब खनन पर लगाम लगाना और मुख्य जलधारा एवं उसकी सहायक नदियों पर बने सभी ढांचों का पर्यावरणीय प्रवाह बनाए रखना। पर्यावरणीय प्रवाह का आकलन एक समयबद्ध तरीके से सभी नदी घाटियों के लिए किया जाना चाहिए ताकि साल के सभी

मौसम में नदियों में समुचित जल प्रवाह को सुनिश्चित किया जा सके। इससे नदियां अपने सारे पारिस्थितिकीय प्रकार्यों को अंजाम दे सकती हैं जिनमें भूजल रिचार्ज और स्थानीय स्तर के खास बायोटा (किसी विशेष क्षेत्र में मौजूद सभी पेड़-पौधों एवं पशु-पक्षियों) को दिया जाने वाला प्रोत्साहन भी शामिल है। नई जल नीति में कहा गया है कि नदियों में अविरल धारा सुनिश्चित किए बगैर निर्मल धारा का होना असंभव है। इसमें नदियों का अधिकार अधिनियम का मसौदा तैयार करने के लिए सभी हितधारकों के बीच गहन विचार-विमर्श की बात भी की गई है ताकि नदियों को समग्र कानूनी संरक्षण मिल सके। इस तरह नदियों को प्रवाह बनाए रखने, इधर-उधर घुमावदार मार्ग से होते हुए बहने और समुद्र से मिलन का अधिकार दिया जा सकेगा।

आजादी के बाद की बाढ़ नीति मुख्य रूप से बड़े बांधों एवं तटबंधों पर ही केंद्रित रही है। लेकिन समय के साथ समस्या बढ़ती ही गई है। तटबंधों में दरार आने, खराब ढंग से बनीं एवं खराब रखरखाव वाली नहरें और बाढ़ से प्रभावित होने वाले मैदानों एवं जल-निकासी रेखाओं पर बस्तियां बसाने से भी स्थिति बिगड़ी है। तटबंधों ने पहले से ही गाद से भरी नदियों में नाटकीय रूप से तलछट बढ़ा दी है। ऊपरी जलग्रहण क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर अपरदन होने से नदियों में गाद बढ़ती गई है। इस तरह नदियों का तल उठने से नदियों के स्वभाव में अस्थिरता आई है और अक्सर तटबंध तोड़कर रिहायशी इलाकों तक बाढ़ का पानी पहुंचने लगा है। नदी या समुद्र की तरफ जाने वाले प्राकृतिक मार्गों के नष्ट होने से बाढ़ की समस्या और भी बढ़ गई है। प्राकृतिक मार्ग अवरुद्ध होने से बाढ़ का पानी शहरी एवं ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में हमारे घरों एवं कार्यस्थलों तक पहुंचने लगा है।

इस लिहाज से बाढ़ प्रबंधन के बारे में हमारा समग्र दृष्टिकोण बाढ़ नियंत्रण की जगह 'बाढ़-सूचित विकास' या 'बाढ़ के संदर्भ में लचकदार जीवन एवं आजीविका का निर्माण' होना चाहिए। बाढ़ की आशंका वाली नदी प्रणालियों में 'नदी को जगह देने' वाली परियोजनाएं नदी-केंद्रित ढंग से चलाई जानी चाहिए। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 में उल्लिखित नदी नियमन क्षेत्रों का निर्धारण कर अधिसूचित कर देना चाहिए ताकि नदी-तटों एवं बाढ़ के मैदानों में विकास-जन्य हस्तक्षेपों को रोका जा सके।

पानी के संरक्षण और 'सेवा की भावना और देखभाल की नैतिकता' के वाहक के तौर पर महिलाओं की अहम भूमिका को स्वीकार करते हुए नई जल नीति के हरेक खंड में लिंग का खास तौर पर जिक्र किया गया है। जल नीति के सभी खंडों को लैंगिक रूप से संवेदनशील बनाने के साथ ही इसके लिए विशिष्ट प्रावधान भी किए गए हैं। जल नीति में काफी हद तक उपेक्षित इन आयामों पर बल देने के लिए लिंग, समानता एवं सामाजिक समावेशन पर एक पृथक खंड भी है। जल संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन के विविध संभावित प्रभावों के कारण मौसमी घटनाओं में आए त्वरित बदलावों को स्वीकार करते हुए इस नीति में इन चुनौतियों से निपटने के लिए एक समग्र कार्रवाई का एजेंडा भी रखा गया है। नई जल नीति का संस्थापक सिद्धांत ही यह है कि इसमें भारत की अतिशय विविधता की झलक मिलनी चाहिए।

इस बात के मद्देनजर देश के तीन भौगोलिक इलाकों- हिमालयी, वर्षा वाले क्षेत्र और तटीय क्षेत्र पर विशेष ध्यान दिया गया है। अतीत में उपेक्षा के शिकार रहे इन इलाकों की खास जरुरतों को ध्यान में रखते हुए जल नीति में विशेष प्रावधान रखे गए हैं। अंतर्देशीय जलीय मार्गों पर आवागमन और परिवहन के लिए नीति में बेहतर नियमन, सुधरी हुई व्यवस्था और सुरक्षा व्यवस्था एवं अधिक सक्षम परिचालन के लिए निवेश की जरूरत पर जोर दिया गया है। जल नीति में कहा गया है कि स्थानीय समुदायों के यात्री एवं माल परिवहन के साथ ही छोटे कारोबारों एवं विनिर्माताओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। ऐसा करने से स्थानीय अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन मिलेगा और रोजगार अवसर भी पैदा होंगे।

विश्वसनीय आंकड़ों का साथ मिलने पर जल प्रबंधन अधिक असरदार हो जाता है। हाल में भारत जल संसाधन सूचना प्रणाली जैसे बढिया सुधार होने के बावजूद आंकड़ों के दायरे एवं गुणवत्ता में अब भी बड़ी खाई मौजूद है। नई जल नीति में वास्तविक समय में डेटा उपलब्धता की तरफ अग्रसर समग्र डेटा संकलन जैसी कई अनुशंसाएं की गई हैं। केंद्र एवं राज्यों की सरकारों, शोध संस्थानों और नागरिक समाज रूपी विभिन्न हितधारक इस तरह से साझा राष्ट्रीय प्रयास करें जो सही मायनों में डेटा संकलन, विश्लेषण एवं अनुप्रयोग को लोकतांत्रिक बनाए। नई जल नीति जल अनुसंधान का व्यापक एवं केंद्रित एजेंडा पेश करने के साथ यह भी बताती है कि पानी से संबंधित शिक्षा को प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक पाठ्यचर्चा का अविभाज्य हिस्सा बनाने की जरूरत है।

Date:26-10-21

फेसबुक या फेकबुक

संपादकीय

सोशल मीडिया के नाम पर फेसबुक भारत जैसे सहिष्णु देश में जो काली करतूतें कर रहा है उसकी कलई उसी की कई अंदरूनी रिपोर्टों और अध्ययनों में खुल गई हैं। कंपनी के लीक हुए दस्तावेजों से खुलासा हुआ है कि फेसबुक भारत में नफरती संदेशों, झूठी सूचनाओं, भड़काऊ सामग्री तथा हिंसा को फैलाने का माध्यम बन गया है। वेबसाइट भारत में घृणा फैलाने वाली सामग्री को रोकने में भेदभाव करती रही है खासकर एक समुदाय विशेष के खिलाफ प्रकाशित सामग्री को लेकर ऐसा रवैया अपनाया गया है। इस तरह की बातें कहने वाले ये दस्तावेज नए नहीं हैं। फेसबुक छोड़ चुके लोग यह बात पहले भी कहते रहे हैं। भारत में सोशल मीडिया पर सांप्रदायिक और भड़काऊ सामग्री बड़ी चिंता की बात रही है। इन पर साझा की गई सामग्री के कारण हिंसा तक हो चुकी है। फेसबुक प्रबंधन लंबे अर्से से इस बारे में जानता है लेकिन उसने इस समस्या को सुलझाने के लिए कोई कदम नहीं उठाया। आज फेसबुक दुनिया भर में खतरनाक राजनीतिक हथियार बन चुका है, भारत भी इससे अछूता नहीं रहा है। रिपोर्ट के अनुसार समुदाय विशेष के खिलाफ नफरती संदेशों और फर्जी सूचनाओं के अनेक मामलों में ऐसी सामग्री फेसबुक के अपने फीचर और एल्गोरिदम के जरिए फैलाई गई। इस पर कंपनी के अनेक लोगों ने चिंता जताई है और इस तरह की सामग्री से जिस तरह निपटा गया, उसे लेकर जोरदार असहमति भी जाहिर की है। फेसबुक ने सफाई दी है कि हाशिये पर खड़े समुदायों जैसे अल्पसंख्यकों के खिलाफ हेट स्पीच दुनिया भर में बढ़ रही है। हम भी अपनी नीतियों में सुधार कर रहे हैं और जैसे जैसे यह अपना रूप बदलती है, हम भी बदलने को प्रतिबद्ध हैं। फेसबुक के एक कर्मचारी ने 2019 के चुनावों से पहले यह देखने के लिए कि भारत का एक आम नागरिक अपनी न्यूज फीड में क्या देख रहा है, एक टेस्ट अकाउंट बनाया और तीन हफ्ते तक चलाया इस दौरान भारत में कई बड़ी घटनाएं हुईं। पुलवामा में अर्द्धसैनिक बलों की बस पर हमला हुआ जिसमें 40 भारतीय सैनिक मारे गए। इसके बाद फेसबुक पर फर्जी खबरों और हिंसक सामग्री की बाढ़ सी आ गई थी। फेसबुक का फीचर पॉप्युलर अक्रॉस फेसबुक ऐसी ऐसी सामग्री दिखा रहा था, जिसकी कहीं पुष्टि नहीं की गई थी। सरकार की जिम्मेदारी है कि वह इन बातों पर गहराई से नजर रखे और सोशल मीडिया को भ्रामक सूचनाएं फैलाकर सामाजिक तानाबाना छिनन भिन्न करने से रोके।

Date:26-10-21

चिकित्सा सेवा विस्तार

संपादकीय

अपने देश में चिकित्सा सेवा का विस्तार सुखद और स्वागतयोग्य है। इसमें भी जब उत्तर प्रदेश जैसे राज्य में नौ मेडिकल कॉलेज का उद्घाटन हुआ है, तो खुशी दोगुनी हो जाती है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने उत्तर प्रदेश में 2,329 करोड़ रुपये की लागत से निर्मित इन मेडिकल कॉलेजों का उद्घाटन किया है, जो सिद्धार्थनगर, एटा, हरदोई, प्रतापगढ़, फतेहपुर, देवरिया, गाजीपुर, मिर्जापुर और जौनपुर जिलों में स्थित हैं। कॉलेजों का उद्घाटन करने के बाद एक जनसभा को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा, 'नौ मेडिकल कॉलेज स्वस्थ भारत के सपनों को साकार करेंगे। ये राज्य के लोगों के लिए एक उपहार हैं।' वाकई इन मेडिकल कॉलेज के खुलने से उत्तर प्रदेश में अस्पताल सुविधा में लगभग 2,500 बिस्तर जुड़ जाएंगे। गौर करने की बात है कि ये ज्यादातर मेडिकल कॉलेज पूर्वांचल में स्थित हैं, जहां चिकित्सा का ढांचा अपेक्षाकृत रूप से कमजोर है। कोरोना के समय भी हमने इन इलाकों में चिकित्सकीय जरूरतों को

महसूस किया है। निजी क्षेत्र में चिकित्सा सुविधाओं का विस्तार हो रहा है, लेकिन उससे आम समाज की जरूरतें पूरी नहीं हो रही हैं। उत्तर प्रदेश में न केवल चिकित्सा की पढ़ाई, बल्कि चिकित्सा सेवाओं और चिकित्सकों की संख्या का बढ़ना अनिवार्य है। जुलाई महीने तक देश में 558 मेडिकल कॉलेज सेवाएं दे रहे थे, जिनमें से 289 सरकारी और 269 गैर-सरकारी थे। अलग-अलग चरण में नरेंद्र मोदी सरकार के समय करीब 157 मेडिकल कॉलेज खुले हैं या उन्हें मंजूरी मिली है। आंकड़ों से साफ है कि निजी मेडिकल कॉलेज की संख्या ज्यादा है, सरकारी मेडिकल कॉलेज की संख्या निजी कॉलेजों से बहुत ज्यादा होनी चाहिए। सरकारी मेडिकल कॉलेज न सिर्फ किफायती दर पर चिकित्सक तैयार करते हैं, बहुत किफायती दर पर चिकित्सा सेवा भी देते हैं। इसके अलावा निजी मेडिकल कॉलेज से पैसे खर्च करके डिग्री हासिल करने वाले चिकित्सकों पर कमाने का दबाव भी ज्यादा रहता है। सरकारी मेडिकल कॉलेज की ज्यादा संख्या किसी भी राज्य के सामाजिक विकास के लिए बेहतर संकेतक हो सकती है। केंद्र सरकार और उत्तर प्रदेश सरकार हर जिले में एक-एक मेडिकल कॉलेज खोलने के सपने के साथ आगे बढ़ रही है, तो स्वागत है। बेशक, विगत वर्षों में नए मेडिकल कॉलेज खोलने की दिशा में प्रगति हुई है, लेकिन इस काम में और तेजी लाने की जरूरत है।

यह भी किसी खुशखबरी से कम नहीं कि सोमवार को प्रधानमंत्री ने आत्मनिर्भर स्वस्थ भारत योजना का भी शुभारंभ किया है। दावा है कि स्वास्थ्य के बुनियादी ढांचे के विकास के लिए यह देश की सबसे बड़ी योजना है। चिकित्सा क्षेत्र में अभी भारत को बहुत लंबा सफर तय करना है। डॉक्टर और मरीज अनुपात के अलावा चिकित्सा की आधारभूत सेवाओं का बड़ा अभाव है। आयुष्मान भारत जैसी योजनाओं की कमियों पर भी गौर करना चाहिए। सरकार की इस योजना की विदेश में भी तारीफ हुई है, लेकिन यह देखना भी जरूरी है कि निजी अस्पताल क्या आम गरीब मरीजों को पूरा लाभ दे रहे हैं? क्या महामारी के समय अब इन अस्पतालों से कोई भी निराश नहीं लौटेगा? किसी भी विकास को जमीनी स्तर पर जरूरतमंद लोगों तक पहुंचाने के लिए सरकारों को पूरी मुस्तैदी से सेवाओं की निगरानी करनी पड़ेगी।

Date:26-10-21

पहाड़ों पर आपदा को हमने ही तो दिया है न्योता

अंबरीश कुमार, (वरिष्ठ पत्रकार)

उत्तराखंड में हाल की भारी बरसात ने सौ साल का रिकॉर्ड ही नहीं तोड़ा, बल्कि पहाड़ के इस अंचल को तबाह भी कर दिया है। 17 अक्तूबर से जो बरसात शुरू हुई, वह 19 की रात तक जारी रही। पहले तो यही लगा कि बादल फट गया, लेकिन तकनीकी रूप से इसे अतिवृष्टि ही बताया गया है। इस आपदा का सबसे ज्यादा असर नैनीताल जिले के रामगढ़, नथुआखान, तल्ला रामगढ़ से लेकर भीमताल में ज्यादा हुआ है। रामगढ़ में तो हमने सामने पहाड़ को दरकते, टूटते और गिरते हुए देखा। करीब तीन दशक से अपना इस अंचल से नाता रहा है, लेकिन ऐसी आपदा और ऐसी तबाही पहले कभी नहीं देखी। दरअसल, यह तबाही वहां-वहां ज्यादा हुई, जहां बिना सोचे-समझे, जमीन की भार सहन करने की क्षमता को बिना जाने बेतरतीब निर्माण किया गया और पानी के स्रोत को बंदकर निर्माण किया गया। यही स्थिति सड़क निर्माण की भी रही।

पानी की निकासी यानी ड्रेनेज सिस्टम को बंद कर निर्माण करने की वजह से ज्यादा नुकसान उठाना पड़ा है। भवाली भीमताल में तो पहले से ही काफी सघन निर्माण हो चुका था और यहां का मौसम भी अब गरमियों में उतना ठंडा नहीं रहता है। अब वहां के ज्यादातर घरों में पंखे लग चुके हैं और होटल-रिसोर्ट में एयरकंडीशन की सुविधा दी जा चुकी है। इस वजह से और ऊंचाई वाली पहाड़ी जगहों जैसे रामगढ़, सतबुंगा, भटेलिया और मुक्तेश्वर की तरफ लोगों ने महंगी जमीन खरीदी और जैसा चाहा, वैसा निर्माण करा दिया। उन्होंने पहाड़ी ढाल पर पानी के प्राकृतिक स्रोत को बंद कर दिया या उसके पास ही निर्माण भी करा दिया।

इसका सबसे दिलचस्प उदाहरण भवाली और श्यामखेत के पास से निकलने वाली शिप्रा नदी है, जिसके उद्गम स्थल के सामने ही लोगों ने निर्माण करा दिया है। इस नदी की धारा को लोगों ने मोड़कर नाले की तरफ घुमा दिया और जहां से नदी बरसात में बहती थी, वहां अब कॉलोनी बस चुकी है। ऐसे में, कभी बादल फटने या जरूरत से ज्यादा बरसात होने पर पानी के रास्ते में जो भी घर मकान आएंगे, वे कैसे बचेंगे? ठीक इसी तरह रामगढ़ से तल्ला रामगढ़ के बीच बाग बगीचों की ढलान वाली जमीन पर लोगों ने बड़े निर्माण करा दिए हैं। पहाड़ पर मैदान की तरह न तो बड़े लॉन का प्रचलन रहा है न जरूरत, पर लोगों ने तीन-चार मंजिला घर बनाने के साथ बड़े लॉन

की व्यवस्था भी कर डाली है। इस वजह से बाग बगीचों की ढलान वाली जमीनों पर रिटेनिंग वाल दी। भारी पत्थरों की यह दीवार मिट्टी को सहारा तो देती है, पर अगर भारी बरसात के बाद ज्यादा पानी मिट्टी में भर जाए, तो ऐसी दीवार अपने वजन को भी नहीं संभाल पाती, क्योंकि ढलान पर बरसाती पानी का प्रवाह बहुत तेज होता है। तीन दिन की भारी बरसात की वजह से इस बार भी यही हुआ। पानी झरने के रूप में ऊपर से नीचे की तरफ बहने लगा और उसके रास्ते में जो भी निर्माण आया, वह प्रभावित हुआ। जहां भी जंगल कट चुके थे या ज्यादा निर्माण हुआ है, वहां ज्यादा नुकसान हुआ है। पहाड़ पर ज्यादातर वे घर गिरे या बहे हैं, जिनका निर्माण बीते दो-ढाई दशक का है।

यहां ज्यादातर निर्माण मैदानी वास्तुशिल्प की तरह कराए गए हैं और पहाड़ के निर्माण में जो जरूरी सावधानी रखी जानी थी, वो नहीं रखी गई है। हिमालय व्यू, रीवर व्यू या लेक व्यू के नाम पर जमीन तो आसानी से बेची जाती है, पर ऐसी जगहों पर निर्माण को लेकर जो सावधानी बरती जानी चाहिए, उसका ध्यान नहीं रखा जाता है। कुछ पहाड़ अभी भी धसक रहे हैं, जो कच्चे पहाड़ माने जाते हैं। इसलिए पहाड़ पर जल निकासी का ध्यान रखना चाहिए। साथ ही, जंगल की कटाई भी कम से कम हो।

एक बात सड़क को लेकर बहुत ध्यान रखने वाली है। पहाड़ पर सड़क बनाते वक्त ध्यान रखा जाता है कि सड़क बनाने के लिए जितना पहाड़ काटा जाएगा, उसी कटे हुए पत्थर की सड़क बनाई जाएगी। लेकिन हो उल्टा रहा है, यहां पहाड़ काटकर नदियों में गिराए जा रहे हैं। ऐसे में, नदियां उफनाएंगी। जेसीबी मशीन से अगर पहाड़ काटकर बिना सूझबूझ सड़क बनाई जाएगी, तो पहाड़ कमजोर हो जाएगा और भारी बरसात में वह सड़क बैठ जाएगी, जैसा कई जगह पर नजर आ रहा है।